IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 23, Issue 8, Ver. 8 (August. 2018) PP 66-74
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

इक्कीसवीं सदी में बौद्ध दर्शन की शिक्षा में उपादेयता

मनोज चौधरी
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन (म0प्र0)
भारत

सारांश :

युग के दार्शनिक झंझावत ने ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की हैं, जिनमें आज का मानव स्वयं को असहाय तथा थका हुआ अनुभव कर रहा है। अस्तु, यह आवश्यक है कि एक समन्वयवादी सोच के प्रति सामान्यजन की आस्था को पुष्टित करे साथ ही वैज्ञानिक सत्यों को स्वीकारते हुये जीवन के उदार मूल्यों को अंगीकार कर सकें।[1]उस समय में शिक्षा की स्थिति, एवं आज के समय में प्रासंगिता पूर्णतः बौद्ध दर्शन एवं व्यवस्था पर निर्मित है, बौद्ध एक ओर करोड़ो लोगों में ज्ञान के द्वारा प्राण फूंकने में समर्थ है तो दूसरी ओर समकालीन ज्ञान पद्धति की कमियों को दूर करने में समर्थ है। समकालीन शिक्षा स्वरूप उन गरीब बालकों को कोई दूसरा अवसर नहीं प्रदान करती जो इसके संकीर्ण सोच के द्वारा प्रवेश से वंचित रह जाते हैं या जो सामाजिक या आर्थिक कारणों की विवशता से त्रस्त होकर इससे बाहर निकल जाते है, समकालीन शिक्षा संरचना निहित स्वार्थो की सहायता करने को प्रोत्साहित करती है, यथा स्थितिवाद को प्रोत्साहन देती है तथा शैक्षिक समानता के अवसरों का गला घोंटती है। वस्तुतः आधुनिक कालीन शिक्षा संरचना दोषयुक्त तथा असमानताओं को बढ़ावा देने वाली है।[2] कह सकतें हैं कि तार्किक चिन्तन एवं अभिवृत्तियों में विकास के साथ–साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति में अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हुई है, इसे बौद्धिक क्रान्ति कहा जा सकता है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी की प्रगति ने समकालीन शिक्षा के व्यवस्था को भी चुनौती बना दिया है। वर्तमान कालीन शिक्षा व्यवस्था में जो ज्ञान प्रदान किया जा रहा है वह ज्ञान अगले वर्षो में पिछड़ी मानी जाने लगती है।

प्रस्तावना :

समकालीन ज्ञान औपचारिकता के बन्धन में जकड़ी है कि वह पूर्णतः निष्क्रिय होकर मूल उद्देश्य से भटकती जा रही है, वस्तुतः आज की शिक्षा संरचना उपाधि धारक बनती जा रही है न कि ज्ञानवर्धक। इसी कारण शिक्षित बेरोजगारी में तीव्र वृद्धि हो रही है। वर्तमान ज्ञान प्रणाली वैदिक सभ्यता व संस्कृति से अलगाव का स्वरूप बना रही है । वस्तुतः अधुनातन शिक्षा व्यवस्था ने देश में अनेक भेद एवं विषमताओं को जन्म दिया है अतः वर्तमान शिक्षा संरचना में देश की आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम नही है, अतएव एक ऐसी शिक्षा संरचना की आवश्यकता है जिससे देश या समाज तथा व्यक्ति की समस्याओं का समाधान कर सकें। यह कार्य बौद्ध काल में वर्णित ज्ञान स्वरूप को अंगीकृत कर सकता है, इस शिक्षा संरचना में समानता का वातावरण था, ऊँच नीच का भेदभाव नहीं था, न ही धनी–निर्धन का भाव। शिक्षा मुक्त हस्त से आचार्यो द्वारा सुयोग्य पात्र को प्रदान की जाती थी, गुरू–शिष्य सम्बन्ध परस्पर सामंजस्यपूर्ण मधुर थे। शिष्य गुरू को यथोचित सम्मान प्रदान करता है। स्त्री शिक्षा तथा शूद्र शिक्षा समान रूप से दी जाती थी, समाज में स्नातक का सम्मानित स्थान था। समाज में एकता का पाठ बौद्ध शिक्षा केन्द्र भली–भांति सफलतापूर्वक पढ़ा रहे थे।[3] अनुसंधानों पर ज्यादा बल प्रदायित था, नवीनतम अनुसंधानों को प्रेरित किया जाता था। अतएव बौद्ध काल में शिक्षा की स्थिति या विस्तार के अध्ययन द्वारा बौद्ध ज्ञान प्रणाली का जानकारी प्राप्त कर निष्कर्षों को समकालीन शिक्षा में प्रयोग कर वर्तमान स्वरूप में सुधार तथा समद्ध बनाया जा सकता है।

अध्ययन की आवश्यकता तथा महत्व :

बौद्ध शिक्षा दर्शन मानव के उत्थान हेतु मानव मूल्यों को जाग्रत करने में तथा मानव मूल्यों की स्थापना करने में सक्षम है। भारतीय जीवन दर्शन का मूलाधार चार तत्व है। बौद्ध दर्शन भी इन चारों में अद्भुत समन्वय स्थापित करता है, धर्म तो जीवन का विशिष्ट व्यवहारिक तत्व है। जो व्यक्ति बिना

किसी अहित एवं बिना किसी को कष्ट पहुँचाये जीवन व्यतीत करता है वही सच्चे अर्थो में धर्म का पालन करता है उसी को धार्मिक कहा जाता है। बौद्ध दर्शन के अन्तर्गत धर्म को नैतिक आचारपरक संहिता के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। अर्थ तथा काम को बौद्ध दर्शन मर्यादाओं के भीतर स्वीकार्य करता है। इससे बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को महत्व दिया गया है। मोक्ष तो बौद्ध दर्शन का परम लक्ष्य माना गया है। भगवान ने मोक्ष के मार्ग की खोज हेतु अपना जीवन व्यतीत कर दिया, बुद्ध का मोक्ष मार्ग समस्त मानव के लिए था।[4]

बुद्ध, संघ धर्म बौद्ध शिक्षा के तीन अंग थे। बुद्ध का अर्थ है आचार्य तथा ज्ञान की प्राप्ति हेतु संघ का होना परमावश्यक है, तत्कालीन संघ का तात्पर्य शिक्षा केन्द्र से माना जाता है। ज्ञान प्राप्ति हेतु संघ में प्रवेश लेना परमावश्यक था। तत्कालीन संघों में सुयोग्य विद्वान एवं आचार्यों द्वारा प्रदान की जाती है। 'धर्म' बौद्ध ज्ञान का तृतीय महत्वपूर्ण लक्ष्य तथा अंग था। धर्म के ज्ञान से ही सच्चे तथा वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है। वर्तमान ज्ञान के संरचना में शिष्य, गुरू एवम तालीम केन्द्र, पाठ्यक्रम आदि के महत्ता को माना गया, किन्तु धर्म का प्रवेश स्वीकार्य नहीं है। धर्म से ही नैतिकता का प्रादुर्भाव सम्भव है। अधुनातन शिक्षा प्रणाली का प्रमुख आधार समानता तथा सर्वधर्म समभाव है। तथा विद्वानों द्वारा समकालीन शिक्षा में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना के कोशिश किया जा रहा है, किन्तु नवीन जीवन मूल्य नैतिकता का विकास करते हैं वे भारतीय जीवनदर्शन एवं जीवन मूल्यों को अपनाने से ही संभव हैं क्योंकि भारतीय जीवन मूल्यों के अनुसार ही मानव जीवन का सम्पूर्ण विकास सम्भव हैं, ये प्राचीन जीवनादर्श सांस्कृतिक, सभ्य, अनुशासनबद्ध एवं सदाचारी बनाते है।[5] सामाजिक समानता तथा आर्थिक एवं राजनैतिक समानता, प्राचीन भारतीय जीवन मूल्यों को वर्तमान ज्ञान के स्वरूप में बिना समावेशन के संभव नहीं है। भारतीय जीवन मूल्यों के स्तम्भ पर ही मानव जीवन का सम्पूण उन्नति संभव है। बौद्ध दर्शन की प्रेरणा से ही 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' की कल्पना साकार की जा सकती है।

वर्तमान ज्ञान के स्वरूप में आधुनिक मनुष्य सामाजिक पशु बनता जा रहा है, वर्ग–भेद, वर्ण–भेद, क्षेत्रीयतावाद, तथा अन्य कई वादों ने मानवजाति एवं विश्व की शान्ति को खतरे में डाल दिया है। विश्व बन्धुत्व एवं सर्वधर्म समभाव की भावना मृतप्राय है, इस कारण समस्त विश्व के विवेकशील, वैज्ञानिक, दार्शनिक, राजनयिक, शिक्षा शास्त्री तथा चिन्तक इस व्यवस्था में सुधार लाने के उपायों की खोज करने लगे है कि किस प्रकार विश्व में एक संस्कृति का उदय हो जिसमें मानव मात्र का कल्याण हो तथा विश्व शान्ति की स्थापना हो, इस दर्शन का परमोद्देश्य मानव मात्र का कल्याण, विश्वबंधुत्व की स्थापना तथा सर्वधर्म समभाव था। बौद्ध दर्शन का अन्य आधारभूत तत्व उसका कर्मवाद है। 'धर्म' आधारित कर्म ही जीवन का विकास करते हुए 'मोक्ष' की प्राप्ति मे सहायक होता है। अच्छे कर्मों द्वारा ही व्यक्ति मोक्ष की तरफ अग्रसर होता है।[7] जिससे व्यक्ति मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा चारित्रिक विकास द्वारा सर्वांगीण विकास बौद्ध ज्ञान दर्शन का पवित्र लक्ष्य है। इससे वर्तमान शोध की समस्या अवश्य अपने आप ही परिलक्षित होता है।

वर्तमान ज्ञान का स्वरूप शिक्षित बेरोजगारी, सामाजिक असंतुलन को जन्म देती है, यह एक बन्द वृत्त के समान है जिसके अनुसार अध्ययन करने पर जीवन में ठहराव सा आ जाता है वस्तुतः वर्तमान शिक्षा इस उम्मीद पर अवलम्बित है कि विद्या जीवन की तैयारी के लिए है।यह केवल प्रमाण पत्र एवं उपाधियाँ वितरित करने का यंत्र है। यह केवल 'मैट्रीकुलेटों' एवं 'ग्रेजुएटों' के आंकडों में वृद्धि करती है। लेकिन मानव मन ज्ञान की पिपासा जाग्रत कर वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन की उन्नति में सहायक नहीं बन पाती है। वर्तमान समय में पश्चिमी सभ्यता एवं शिष्टाचार का अंधानुकरण तीव्रगति से हो रहा है कामुक भावों का प्रदर्शन, जन्म दिवस पर केक काटना तथा दीप बुझाना, विवाहोत्सव आदि में पाश्चात्य ढंग से नृत्य करना आदि रीतियां बढ़ रही है। भारतीय समाज में यह प्रवृत्तियां नैतिक रूप से पतन मानी जाती है। वर्तमान शिक्षा भी इन भौतिकवादी प्रवृत्तियों का शिकार हो चुकी है। भौतिकवादी युग की शिक्षा का भौतिक होना स्वाभाविक है। वर्तमान शैक्षिक वातावरण भौतिकता में इतना अधिक दूषित हो गया कि गुरू, छात्र का लक्ष्य परीक्षा उत्तीर्ण हो जाती है, चाहे वह प्रमाण पत्र अनुचित माध्यमों से क्यों न प्राप्त हुआ है। अनुशानहीनता, नकल की प्रवृत्ति, अभद्र व्यवहार तथा अस्वस्थ नेतागिरी का नग्न प्रदर्शन शिक्षा केन्द्रों में प्रतीत हो रहा है। शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षण का वातावरण मृतप्राय है। गुरू शिष्य के मध्य सम्बंधों में पवित्रता का अभाव होता जा रहा है। गुरू को सर्वाधिक महत्व देने की बात इतिहास एवं कथा–कहानियों का विषय बनती जा रही है। प्राचीन शिक्षा में गुरू–छात्र के मध्य

पिता–पुत्र का सम्बन्ध है, गुरू को माता–पिता, सखा तथा ईश्वर से सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता था, आज अपने संकीर्ण स्वार्थो की पूर्ति हेतु न तो शिष्य अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा है, न ही गुरू अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ति कर रहा है। नैतिक मूल्यों में दिनों दिन ह्रास हो रहा है।[8]

समकालीन पद्धति में पाश्चात्य शिक्षा दर्शन से सम्बन्धित सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, वहीं दूसरी ओर वैदिक कालीन पर अनुसंधान अनुसंधानकर्ताओं ने खास जोर नहीं दिया यद्यपि वर्तमान एंव पूर्व दशकों में इस दिशा में शोध कार्य आरम्भ तथा सम्पन्न हुए है। अरविन्द, राधाकृष्णन, विवेकानन्द, गांधी, टैगोर आदि दार्शनिकों के जीवन तथा विचार दृष्टिपात एवं विश्लेषण अनेक शोध ग्रन्थों में मिलता है, अनेक अनुसंधानकर्ता प्रायः यह भ्रान्ति धारण किये रहते है कि ज्ञान का स्वरूप प्राचीन शिक्षा प्रणाली में परिलक्षित होता है। वास्तविकता तो यह है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान दर्शन एवं वैदिक ज्ञान प्रणाली दोनो ही पृथक एवं स्वतंत्र विषय है, इस दिशा में अनुसंधानों में अपर्याप्त कार्य ही इस भ्रान्त धारणा का प्रमुख कारण है। अतएव प्राचीन ग्रन्थों में भारतीय शिक्षा दर्शन सम्बन्धी तथ्यों के वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध विवेचना तथा शोधकार्यो की महती आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान का स्वरूप से सम्बन्धित सामग्री महाकाव्यों, धार्मिक ग्रन्थों, पुराणों, बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इन पर क्रमबद्ध विश्लेषणात्मक अनुसंधानों की आवश्यकता है।

बौद्धकालीन शिक्षा और वर्तमान परिवेश :

बौद्धकालीन शिक्षा की वर्तमान या सामायिक परिवेश में प्रासंगिकता की बात की जाय, तो बौद्धकालीन शिक्षा के अनेक गुण वर्तमान परिवेश में बहुत लाभकारी है। बौद्धकालीन शिक्षा के अनेक गुण अभी भी हमारी तालीम में प्रतिबिंबित होते है जैसे सामान्य विद्यालय, सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा, सभी धर्म और जातियों के बालकों हेतु समान शिक्षा का अवसर, महिलाओं हेतु उच्च शिक्षा की व्यवस्था, लौकिक और सामान्य पाठ्यविषयों का ज्ञान प्रदान करने की स्वरूप, वाणिज्य और लाभप्रद विषयों की शिक्षा सैद्धांतिक और प्रयोगात्मक शिक्षा की व्यवस्था, शिक्षा के अनेक स्तरों का विकास, खेल कूद एवं शारीरिक शिक्षा की संरचना, ज्ञान के विभिन्न स्तरों पर अध्यापन की निश्चित अवधि की व्यवस्था इत्यादि गुण वर्तमान समय मे भी हमारी शिक्षा संरचना में बने हुए है।

प्रस्तुत विवेचना यह बताती है कि जिस प्रकार आज मनुष्य संस्कारविहिन हो जो रहा है वह पश्चिमी सभ्यता की अंधी दौड़ दौड़ रहा है ऐसे में उसके लिए तथागत बुद्ध द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं की और अधिक आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम संस्कृति है। जिसको कुछ संकीर्ण विचार वाले लोगों ने समय पर धूमिल करने की कोशिश किया। किन्तु जैसे अनेक नदियां समुद्र में मिलती है ठीक उसी प्रकार ऐसी संकीर्ण विचार का अत्यधिक प्रभाव भी भारतीय मूल संस्कृति पर नहीं पड़ता।[9] जिसे पुनः जीवित करने के लिए समय पर महापुरुषों ने प्रयास किया है। अतः तथागत बुद्ध के शैक्षिक विचारों की वर्तमान युग में पहले से ही ज्यादा प्रासंगिकता है।

सामायिक परिवेश और बौद्धकालीन शिक्षा के उद्देश्य :

व्यवहारिक दृष्टि से शिक्षा औपचारिक, अनौपचारिक और औपचारिकता से परे उस संरचना क्रम को बनाती है, जिसमें एक शिक्षार्थी ज्ञान, कुशलता, नैतिकता, मूल्य और वैयक्तिक तथा सामाजिक अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण दिशा निर्देश प्राप्त करता है।[10]

इस शिक्षण व्यवस्था के अध्ययन करने से मालूम होता है कि बौद्धकाल के शिक्षा–दर्शन की उपादेयता सदैव बनी रहेगी। इस दर्शन का लक्ष्य आज के शिक्षा के समान नही है। बौद्ध समय में भी शिक्षार्थी के विकास को प्रयत्न होता था। तथा संस्थाएँ स्वतंत्र रूप से अध्ययन–अध्यापन कार्य करती थीं तथा बालक को श्रेष्ठ अनुभव देने का प्रयत्न करती थीं। बालकों को ऐसे आचरण की सीख दी जाती थी जिससे उसके मस्तिष्क को स्थिरता व शान्ति प्राप्त हो सके।[11] बौद्धकालीन शिक्षा में शान्ति, अहिंसा व वसुधैव कुटुम्बकम् के सिद्धान्त तथा प्रजातान्त्रिक संगठन की प्रवृत्ति निहित थी।

शिक्षा संवेदनशीलता तथा प्रत्यक्षीकरण को परिभाषित करती है जो राष्ट्रीय एकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा मस्तिष्क व आत्मा की स्वतंत्रता को बढ़ाते हैं। मानव समाज हेड एक सतत् क्रिया और आधार शिक्षा है जो लोगों की बदलती परिस्थितियों के अनुरूप बनने के लिए शान्ति और लचीलापन

प्रदान करती है। सामाजिक विकास के लिए प्रेरित करती है तथा उसमें योगदान देने योग्य बनाती है। ज्ञान का सम्बन्ध भविष्य से होता है अतः इसका स्वरूप सर्वांगीण होना आवश्यक है।[12]

बौद्धकाल में धर्म शिक्षा का मेरूदण्ड था। धर्म तथा आध्यात्मिक रूचि के वजह से शिक्षा का लक्ष्य धार्मिक पवित्रता, आत्म विकास तथा आत्मज्ञान या आत्मबोध माना गया था। तथागत द्वारा प्रतिपादित आष्टांगिक मार्ग शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में है।[13] कालान्तर में बौद्ध शिक्षा स्वरुप में जो नवीन और व्यवहारिक उद्देश्यों को स्थान मिला (नैतिक जीवन, व्यक्तित्व का उन्नयन, संस्कृति संरक्षण, धर्म व आध्यात्मिक संरक्षण) वे छात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी थे तथा आज भी शिक्षा के संगत उद्देश्य माने जाते हैं। इन्हीं उद्देश्यों से बौद्धकालीन शिक्षा पद्धति आदर्श बन गयी। समस्त सांसारिक बन्धन मनुष्य को गुलाम बनाते हैं। इसका लक्ष्य व्यक्ति को समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त कराना है। 'सकीरा' ने लिखा है कि– ''धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं में अब निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। भौतिकवादी प्रवृत्ति प्रबल हो रही है। शिक्षा को आज लौकिक और व्यवहारिक दोनों होना चाहिए।

बल्देव प्रसाद मेहरोत्रा के शब्दों में – ''स्वतन्त्रता के पूर्व ब्रिटेन ने भारत में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना ही व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग तैयार करने हेतु किया था जो रंग रूप में भारतीय परन्तु रूचि, विचारों, आचार और पद्धति में अंग्रेज हों। उस समय विदेशी शक्ति के हित, साधन तथा अंग्रेजी जानने वाले शिक्षित वर्ग और शेष जनता के मध्य में वर्ग भेद को स्थायी बनाने के औजारे रूप में शिक्षा के उपयोग की मूल प्रेरणा से ज्ञान प्रसार की कार्यक्रम प्रसारित की गयी। पाठ्यक्रम मुख्य रूप से किताबी था। उसमें स्वतंत्र चिन्तन का सर्वथा अभाव था।[14]

भारत की आधुनिक शिक्षा के जनक लार्ड मैकाले को जाना जाता है। उन्होंने यहाँ के शिक्षा के सम्बन्ध में 1835 में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसका प्रकाशन 1864 ई0 में हुआ था। उसने स्वयं लिखा है– ''हमें इसके लिए पूरी कोशिश करनी चाहिए कि एक ऐसा वर्ग तैयार हो जो रक्त और वर्ण से भारतीय हो, लेकिन रूचि, विचार, भाषा और बुद्धि से अंग्रेज''।[15]

बौद्धकालीन शिक्षा व्यवहारिक थी। इस काल की शिक्षा तथा तथागत दुःख को अत्यन्त निरोध का उपाय बताते थे। लोक शाश्वत है अथवा अशाश्वत, जीव और शरीर एक है या नहीं इन विषयों की व्याख्या बुद्ध ने किया है। बौद्ध–ज्ञान में मानवता तथा मैत्रीभाव की महिमा मंडित है। बौद्धों की साधना त्रिशिक्षा कहलाती है। शील, समाधि और प्रज्ञा यही विशुद्धि का मार्ग है।[16] इस प्रकार बौद्ध–शिक्षा दर्शन के उद्देश्य वर्तमान में प्रासंगिक हो सकते हैं।

सामायिक परिवेश और बौद्धकालीन पाठ्यक्रम :

बौद्ध–शिक्षा निवृत्ति प्रधान थी। इसका प्रमुख उद्देश्य जीवन में ''निर्वाण'' की प्राप्ति था। अधिकांश 'सामनेर' बौद्ध धर्म शास्त्रों का अध्ययन करते थे। परन्तु उस समय जीवनोपयोगी शिक्षा का अभाव भी नहीं था क्योंकि मौर्यकाल और गुप्तकाल को तो भारतवर्ष के स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है। इन कालों में साहित्य, दर्शन, कला, व्यापार, कृषि, सैनिक आदि क्षेत्रों में भारत अपने सर्वोच्च शिखर पर आसीन था। इसके पाठ्यक्रम में केवल बौद्ध–दर्शन का ही अध्ययन सीमित नहीं था। अपितु विद्यार्थियों का तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति के विकासार्थ अन्य दर्शनों का भी समाविष्ट हुआ था। इस प्रकार बौद्ध–दर्शन के पाठ्यक्रम में सम्पूर्ण तत्वज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित था।

महात्मा बुद्ध के अनुसार स्वस्थ विचारों के लिए स्वस्थ मस्तिष्क एवं शरीर आवश्यक माना जाता है। इसलिए विहारों में व्यायाम और खेलकूद का भी प्रबन्ध था। बौद्धकालीन पाठ्यक्रम छात्र के उन्नयन में निहित है। एक ओर ध्यान, चिन्तन व मनन पर आग्रह है तो दूसरी ओर व्यवहारिक और आजीविका परक भी है। इसके पाठ्यक्रम में आध्यात्मिकता एवं व्यवहारिकता दोनों ही समाविष्ट है। बौद्धकाल में उत्कण्ठा अथवा जिज्ञासा के द्वारा शिष्य अपने ज्ञान को बढ़ाता था। चार आर्य सत्यों के बारे में तथागत से पूँछा गया प्रश्न बौद्ध भिक्षुओं के उत्कण्ठा तथा जिज्ञासा की ही परिणाम है। जहाँ बौद्ध–शिक्षा हमारे मोक्ष का साधन थी, जिसका उद्देश्य सिर्फ ज्ञान पाना ही नहीं बल्कि समग्र विकास करना था, अतः बौद्ध–दर्शन से प्रेरणा लेकर हमें वर्तमान शिक्षा के पाठ्यवस्तु को चैतन्य बनाना चाहियें

सामायिक परिवेश और बौद्धकालीन शिक्षण विधि :

शिक्षण–विधि वह माध्यम तथा साधन है जिसके द्वारा छात्र पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों के उद्देश्यों तक पहुँचने में समर्थ होता है। बौद्धकाल में लेखन प्रणाली का विशेष प्रचलन न होने के वजह से शिक्षा पद्धति मुख्यतः मौखिक थी। प्रवचन, भाषण, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि तरीका पर विशेष जोर दिया जाता था।

वर्तमान युग में श्रवण की प्रणाली तो प्रचलित है कक्षा में अध्यापक जो पढ़ाते हैं, उसे छात्र श्रवण करते हैं उस विषय पर बाद में मनन या निदिध्यासन भी कराया जाता है।बौद्धकाल में वाद–विवाद विधि का प्रचलन था। कुछ मठों में अध्यापन की एक मात्र पद्धति वाद–विवाद ही थी। इसमें इस विधि की प्रधानता इसलिए और भी थी क्योंकि बौद्धों को प्रायः विरोधियों से शास्त्रार्थ करने पड़ते थे। छात्र की परीक्षा विद्वानों के मध्य तर्क–वितर्क के द्वारा सिद्ध करना होता था। इस विधि द्वारा अध्ययन करने से छात्र में तर्क–शक्ति, बुद्धि एवं शब्द सामर्थ्य की वृद्धि होती थी।[17]

वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में अध्यापक कक्षा में वाद–विवाद–शिक्षण–विधि को कम प्राथमिकता देते हैं, अतः उनके लिए यह मालूम करना कठिन है कि उनके पढ़ाये गए पाठ को छात्रों ने ठीक से ग्रहण किया अथवा नहीं। अब उन्हें कितने ज्ञान की आवश्यकता है। बौद्ध काल में गुरु–शिष्य संवाद के रूप में भी व्याख्यान दिये जाते थे। प्रारम्भ में छात्र अपना मत रखता है, आवश्यकतानुसार अध्यापक उसका खण्डन करता है यथा नागसेन तथा मिलिन्द का संवाद। वर्तमान पद्धति में इस विधि को अध्यापक छात्रों के मध्य शिक्षण में प्रयोग करते हैं। किसी घटना के विविध तथ्यों, क्रिया के कारणों तथा भावों की गम्भीरता को बताने हेतु शिक्षक व्याख्या की प्रविधि को अपनाता है।[18] भाषा और साहित्य के विषयों में इसका प्रयोग सर्वाधिक होता है जैसे शब्द–व्याख्या, भाव–व्याख्या आदि। अन्य विषयों के शिक्षण में भी इसका प्रयोग होता है।

बौद्ध कालीन शिक्षा में कथा–विधि, अग्र–शिष्य, शिक्षण–विधि, निरीक्षण एवं तुलना विधि, पद्य विधि, सूत्र विधि आदि का भी प्रयोग गुरुओं द्वारा सिखने–सिखाने के कार्य में किया जाता था। तत्कालीन समय मे प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति का ध्यान रखा जाता था। आगे के शिक्षा हेतु 'वाद–विवाद' आदर्श शिक्षण–विधि समझी गयी थी। इस प्रकार बौद्धकाल में अध्यापन की जो प्रणाली प्रचलित थी वह सर्वोत्तम थी। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इन विधियों को समाहित करना चाहिये ताकि विषय बोधगम्य तथा रूचिकर हो जाए।

सामायिक परिवेश और बौद्धकालीन शिक्षा में अनुशासन :

अनुशासन की पहली पाठशाला परिवार होता है और दूसरी विद्यालय। इसके बिना एक सभ्य समाज की कल्पना करना दुष्कर है। एक स्वस्थ समाज के निर्माण और संचालन में उस आबादी का बड़ा हाथ होता है, जो अपने किसी भी रूप में अनुशासनरूपी सूत्र में गुंथे होने से संभव हो पाता है।

शिक्षा का उद्देश्य समाज को बेहतर नागरिक प्रदान करना होता है, जो स्वस्थ समाज के निर्माण में भागीदार बनें। अनुशासन का लक्ष्य शिक्षा में नैतिकता का समर्थन करना है तो भले ही अनुशासन की पहली पाठशाला परिवार होता है, पर एक स्वस्थ समाज के निर्माण में निर्णायक भूमिका उसके विद्यालय निभाते हैं। समकालीन समय में ज्यादातर गुरू विद्यालय में अनुशासन के सही अर्थों से अनभिज्ञ होते हैं। वास्तव में खेल 'आत्मप्रेरित अनुशासन' प्राप्ति का सबसे उपयुक्त माध्यम हैं, जिसे बौद्ध कालीन शिक्षा स्वरूप में व्यक्तिगत अनुशासन जाना गया है। जब तक कोई भी व्यक्ति अपने आप अनुशासन और नियम–पालन में बंध नहीं जाता, तब तक उसे दूसरे से वैसा कराने की आशा करना व्यर्थ है।

सामायिक परिवेश और बौद्धकालीन शिक्षक :

बौद्धकाल में गुरू का स्थान महत्वपुर्ण था प्रत्येक विद्यार्थी के लिए किसी को गुरू बनाना अनिवार्य था इस प्रणाली में गुरूओं के अधीन अनेक छात्रों का समूह ज्ञान प्राप्त करने का काम करते थे। शिक्षण संस्थानों मे आपसी सम्बन्ध सुदृढ़ रखने हेतु गुरूओं द्वारा अनेक विधान निपत किये जाते थे।

अनेक छात्र जो बाद में शिक्षण का काम करनें को इच्छुक रहते थे उन्हें उपाध्याय कहा जाता था इस दर्शन के अनुसार उसी व्यक्ति को शिक्षक बनने का सौभाग्य प्राप्त होता था। जिसे चारो आर्यों के सत्य का ज्ञान हो जाता था और वह अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करता था। जैसे छात्रों से यह उम्मीद रखी जाती थी कि वह सद्व्यवहार करे। ठिक उसी प्रकार शिक्षकों से आशा की जाती थी कि वह अच्छा चरित्र विद्वता आदि को प्रदर्शित करे। उसका कर्तव्य था कि वह अपने छात्रों मे ज्ञान के भण्डार समावेश करने के साथ ही विद्यार्थियों से किसी बात को न छुपायें। छात्र के दुगुर्णों का उत्तरदायी गुरू को माना जाता है

वर्तमान शिक्षा जिसमें अध्यापक सरकारी, अर्धसरकारी कर्मचारी की भांति प्राप्त होने वाले पारिश्रमिक को वास्तविक लाभ के रूप में संदर्भित करके अपने कर्तव्यों का अनुपालन कर रहे हैं। सामाजिक व्यवस्था में शैक्षिक संस्थाओं की गतिशीलता बनाये रखने तथा निजी हित की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रपंचों का आश्रय ले रहे हैं। कुछ मानवीय विचारधाराओं के आचार्य अपने अध्ययन के नैतिक परिवेश को यथावत् चाहते हैं, तो अधिकांशतः विद्यालय को रोजगार के स्थल के रूप में नियमित समय में पाठ्यक्रमों को पूरा करने का उत्तरदायित्व किसी प्रकार वहन करते हैं। शैक्षिक परिवेश की वर्तमान परिस्थितियाँ जिन अनैतिक मूल्यों, असमायोजित युवाओं और असंतुलित व्यक्तित्व को उत्पादित कर रही है, उसका मूल वजह अध्यापकों में अभिभावकत्व की कमी का होना है।[19]

वर्तमान समय में अध्यापक व विद्यार्थी को अपने–अपने दायित्वों को समझने की आवश्यकता है। विद्यार्थी को अपने अध्यापक के प्रति आस्थावान होना होगा तथा अध्यापक को अभिभावक की जिम्मेदारी निभानी चाहिए। वर्तमान समय में नौकरी प्राप्ति के प्रति विद्यार्थी की आशक्ति के वजह से वह रोजगार परक शिक्षा को महत्व देता है।[20] बौद्धकालीन शिक्षा–संरचना में विद्यार्थी विद्या के खोजी और ज्ञान के शोधक होते थे। जिसको पाने के लिए उसे सतत् प्रयत्न करना पड़ता था। विद्यार्थी सादा जीवन उच्च–विचार की भावना को लेकर चलता था। शास्त्रार्थ के द्वारा विद्यार्थी के ज्ञान का सही आकलन होता था। इसमें उपाधियों या प्रमाण–पत्रों द्वारा शिक्षार्थी की क्षमता का आकलन नहीं होता था। वर्तमान समय में परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके विद्यार्थी उपाधि प्राप्त करता है। इसमें उपाधियों के लोभ के लिए नहीं बल्कि ज्ञान पिपासा की परिशान्ति के लिए छात्र ज्ञानार्जन करते थे। इस प्रकार बौद्ध–शिक्षा प्रणाली में परीक्षाओं का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। समकालीन शिक्षा स्वरूप में परीक्षा का खास स्थान है जो कि एक सुनिश्चित पद्धति है। विद्यार्थी परीक्षा पास करने में अधिक रूचि लेते हैं। अधिकांश विश्व–विद्यालयों में वर्तमान परीक्षा का स्वरूप छात्रों को बुद्धिमान तथा विषय ग्राह्यता की अपेक्षा स्मरण शक्ति के प्रदर्शन को उत्साहित करती है।[21]

सामायिक परिवेश और बौद्धकालीन छात्र :

बौद्धकाल में बौद्ध भिक्षुओं को शिक्षा संघों में प्रदान की जाती थी। उस समय अनेक राजा–महाराजाओं ने तक्षशिला, विक्रमशिला, नालन्दा जैसे बड़े–बड़े विश्व केन्द्र को निर्मित करवाया था। केन्द्रों में बौद्धो को शिक्षा प्रदान की जाती थी। इन्हीं संस्थानों के छात्रावासों में विद्यार्थी तब तक रहता था, जब तक वह सम्पूर्ण अध्ययन समाप्त नहीं कर लेता था। इस प्रकार छात्र गुरु के समीप ही अपना अधिकांश समय बिताते थे और गुरु सेवा में लगे रहते थे। इससे यह लाभ विद्यार्थी को मिलता था कि विद्याध्ययन में किसी दिन भी विघ्न नहीं पहुँचता था।

वर्तमान शिक्षा स्वरूप इस प्रकार की है कि विद्यार्थी एक निश्चित समय के लिए शिक्षण केन्द्र में शिक्षा ग्रहण हेतु जाता है। वहाँ यह मात्र 5 या 6 घंटे ही व्यतीत करता है। बाकी समय घर, बाजार, पार्क या अन्यत्र स्थानों पर बिताता है। विद्यार्थी को अधिकांश समय तो घर से विद्यालय और विद्यालय से घर आने–जाने में चला जाता है। यद्यपि अनेक विद्यालयों में आज भी छात्रावासों की सुविधा उपलब्ध है किन्तु उसमें गुरु–शिष्य के सामीप्य की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है।

विद्यार्थियों के रहन सहन व आहार–विहार का इस प्रकार का क्रम था कि धनी–निर्धन का अन्तर नहीं दिखाई पड़ता था किन्तु आज की शिक्षा में धनी–निर्धन व ऊँच–नीच का भेदभाव दिखाई देता है जिससे समाज में अशान्ति, अव्यवस्था एवं अराजकता व्याप्त होती है।

वर्तमान समय में शिक्षण संस्थाओं और विश्वविद्यालयों को जो महत्व प्राप्त है, बौद्धकाल में वही महत्व अध्यापक को प्राप्त था। अपरिपक्व बुद्धि के बालकों का भार अपने ऊपर लेकर अध्यापक, उन्हें प्रबुद्ध एंव कौशलयुक्त बनाता था बौद्ध काल में गुरु ही सर्वाधिक आदरणीय होता था। माता–पिता से केवल तन प्राप्त होता है किन्तु अध्यापक से मानसिक उन्नयन एवं ज्ञान का विकास होता था। वर्तमान में छात्र गुरुओं का अपमान करने में कोई संकोच नहीं करते। सर्वत्र विद्यालय खुल जाने और छात्र का दाखिला हो जाने मात्र से शिक्षा का अभिप्राय समाप्त नहीं हो जाता। शिक्षा का अभिप्राय तो वस्तुतः पूर्ण तब होता है जब छात्र ज्ञान ग्रहण करते है और उनके अन्दर शिक्षित होने का गुण उत्पन्न हो जाता है अर्थात् दूसरे के प्रति सम्मान, आदर प्रेम, मानवता व मानवीय गुणों का विकास हो जाता है। आजकल कक्षा में इतने ज्यादा छात्र हो जाते है कि उनसे व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता है। बौद्धकाल में एक गुरु एवं छात्रों को सभी विषयों का बोध करता था किन्तु आज सभी विषयो हेतु अलग–अलग अध्यापक होते हैं। अतः गुरु से सम्बन्ध का समय छात्र के लिये और भी कम हो जाता है।[22]

सामायिक परिवेश और बौद्धकालीन शिक्षा के केंद्र :

इस देश में शिक्षण संस्थाओं का जन्म वास्तविक रुप में देखा जाय तो बौद्धकाल में ही आरम्भ हुई थी और बाद में ये ज्ञान के केन्द्र बन गये, इनका अस्तित्व गुरूकुलों के भॉति था। जहॉ पर किसी मठ या विहार का मुख्य संरक्षक गुरू ही हुआ करते थे, यहॉ पर सभी जातियों को समान रूप से ज्ञान प्रदान किया जाता था किसी भी प्रकार का भेद–भाव का अभाव था। परन्तु प्राचीन ग्रन्थों से यह ज्ञात होता है कि संस्थाओं के आरम्भ होने पर यहाँ पर केवल इस धर्म को मानने वाले छात्र एवं छात्राओं को ही प्रवेश की अनुमति थी, बाद में सभी जाति एवं धर्मों को अनुमति दे दी गयी। यहॉ पर दी जाने वाली शिक्षा इस समय के शिक्षा के समान ही निःशुल्क थी, तत्कालीन संस्थाओं में विक्रमशिला, वल्लभी, और नालन्दा, शिक्षा के प्रमुख केन्द्र हुआ करते थे। यहॉ का खर्च समृद्ध लोगों द्वारा दिये गये सहायता राशि से की जाती थी, यहॉ पर ज्ञान प्राप्त करने वाले छात्रों हेतु बुनियादि आवश्यकतायें पूर्णतः निःशुल्क थी। जिनमें आवास, चिकित्सा, भोजन परिधान आदि प्रमुख हैं। मठों एवं विहारों के भवन काफी विशाल हुआ करते थे, जहॉ पर छात्रावास भी थे। यह छात्रावास पूर्णतः निःशुल्क थे, वर्तमान समय में इसी तरीके के विद्यालयों की उम्मीद की जाती है। परन्तु वास्तविकता यह है कि अब शिक्षा के केन्द्र व्यवसाय के केन्द्रों में पर्णित हो चुके हैं।

आज हमारे देश में करोड़ों संस्थायें हैं जो जनतंत्रीय मूल्यों पर आधारित नही हैं और उनपर कोई बाहरी नियंत्रण भी नहीं है। संस्थाओं का स्वरूप प्राचीन भारतीय शैक्षणिक संस्थाओं के अनुरूप होना वांछनीय है। **डॉ0 आर0 के0 मुखर्जी** के अनुसार बौद्ध प्रणाली में शिक्षा, विहार, मठ, में प्रदायित थी। जिसमें समूह आपस में मिल–जुल कर रहने की संवेदना और जनतंत्र हेतु मौका प्रदान होता था।

सामायिक परिवेश और बौद्धकालीन प्रौढ़ शिक्षा एवं सतत् शिक्षा :

प्रौढ़–शिक्षा के अन्तर्गत अनपढ़ प्रौढ़ अपने कार्य को करते हुए शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक तथा नैतिक विकास करता है जिससे वह एक पूर्ण मनुष्य बन सके। वास्तव में प्रौढ़ शिक्षा शैक्षिक विकलांगों या शिक्षा विहीन व्यक्तियों के पुनर्वास का एक सामाजिक प्रयास है। प्रौढ़–शिक्षा एक बहुउद्देशीय प्रत्यय है जिसमें व्यवहार के तीनों पक्षों ज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक के विकास के लिए क्रमशः साक्षरता–प्रसार, चेतना–जागृति व व्यवहारिक कुशलता में वृद्धि सम्मिलित है। समाज का एक वर्ग जो व्यक्तिगत, पारिवारिक सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक अथवा अन्य कारणों की वजह से स्कूली शिक्षा से विरत हो अत्यधिक आयु हो जाने के वजह से शिक्षा संस्थानों से शिक्षा नहीं ले पाते हैं, उन्हें प्रौढ़ शिक्षा या सतत् विद्या के द्वारा साक्षर कर उसके जीवन को प्रगतिशील बनाया जा सकता है।[23]

हजारों वर्ष पूर्व में अपनायी गयी सतत् शिक्षा का अवलोकन करके हम वर्तमान सतत् शिक्षा के सम्प्रत्यय को संरचित एवं सुगठित कर सकते हैं। सर्वजनीय बहुमुखी पुनरूत्थान के लिए तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को और प्रभावी एवं फायदेमंद हेतु हो। बौद्ध शिक्षा प्रणाली का महत्वपूर्ण पक्ष था उसका

धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म से सुसम्बद्ध होना। समकालीन ज्ञान धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म से बहुत दूर हो चुकी है। मानव जाति का उद्धार आत्मज्ञान से ही संभव है। आत्म ज्ञान अध्यात्मज्ञान के बिना संभव नहीं है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में दर्शन तथा धर्म को स्थान देना होगा। धर्म एवं दर्शन से दूर होने के कारण ही आज मानव अपने नैतिक मूल्यों को खो चुका है।

शैक्षिक निहितार्थ :

यद्यपि तत्कालीन शिक्षा और आधुनिक शिक्षा के बीच कई सैकड़ों वर्षो का अन्तर है लेकिन बौद्धकालीन शिक्षा की अनेकों ऐसी अनेक विशेषताएँ जिन्हें सैद्धान्तिक और कौशलात्मक तरीके से समकालीन शिक्षा में समाहित हो सकता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली यद्यपि बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली से पूर्णतः अलग प्रतीत होती है, किन्तु वर्तमान शिक्षा को प्रबन्धित करने और विभिन्न प्रकार की दुष्वारीयों के निदान खोजने में बौद्ध कालीन शिक्षा सहायता प्रदान कर सकती है। इसके आदर्शों अर्थात् श्रद्धा, भक्ति, सेवा, सम्मान, आत्मानुशासन, सादा जीवन ब्रह्मचर्य, नैतिकता आदि को अपना करके वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप ज्ञान अवस्थापन हो सकती है। छात्र अंसतोष, अनुशासनहीनता, बेरोजगारी, निर्धनता, जाति, राष्ट्रीय एकता, भाषा सम्बन्धी भेदभाव जैसी अनुत्तरित समस्यायें दिन प्रतिदिन भयंकर परिणाम ला रही है। वैदिक कालीन शिक्षा को अपनाने से ही पूर्व की भाँति विदेशी छात्रों को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगी ।बौद्धकालीन शिक्षा से अर्थ है उच्च विचारों, स्वानुशासन, स्नेह व श्रद्धा पर आधारित गुरू–शिष्य सम्बंध, नगरों के कोलाहल से दूर माहौल, समूह व्यस्त दिनचर्या, सगुण आदतों का निर्माण, मानवता एवं विश्वबंधुत्व के मनोदशा से परिपूर्ण पाठ्यवस्तु, प्रश्नोत्तर व शास्त्रार्थ तरीकों का अनुप्रयोग सरल दुर्व्यसनों से दूर जीवनयापन आदि अनेक ऐसी बातें हैं जो आज भी शैक्षिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं।

सारांशतः यह कहना उचित होगा कि बौद्ध युगीन पद्धति तत्कालीन संसार की श्रेष्ठतम शिक्षा प्रणाली थी किन्तु आज के भारतवर्ष के समाज की संरचना तथा उसके भविष्य की आवश्यकताओं की दृष्टि से कुछ तत्व ग्रहणिय है। बौद्धकालिन शिक्षा प्रणाली के प्रमुख ग्रहणीय तत्व है, निःशुल्क शिक्षा, विस्तृत उददेश्य, विस्तृत पाठ्चर्या, आचार्य–शिष्य का आत्मानुशासित जीवन, आचार्य–शिष्य के बीच मधुर सम्बन्ध तथा शिक्षा केन्द्रों की संस्कार प्रधान पद्धति।

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. पाण्डेय, डॉ0 गोविन्द चन्द्र, (1973).**बौद्धधर्म के विकास का इतिहास** हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ0प्र0 लखनऊ, पृष्ठ 213।
2. उपाध्याय, भरतसिंह, (2011).**बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय प्रकाशक,** हिन्दी मण्डल वि0 सं0 पृष्ठ 67।
3. .आचार्य नरेन्द्रदेव, (2013). **बौद्धधर्म दर्शन बिहार** राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, वि0सं0 पृष्ठ 124।
4. राय, राम कुमार, (1969).**बौद्ध न्याय, भाग–1 व 2** चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, पृष्ठ 156।
5. उपाध्याय, बलदेव, (1966). **भारतीय दर्शन** शारदा मंदिर, वाराणसी, पृष्ठ 12।
6. सिंह, बी0एन0, (1986**). बौद्धधर्म एवं दर्शन** आशा प्रकाशन, सदानन्द बाजार, वाराणसी, पृष्ठ 82।
7. हिरियन्ना, (1965). **भारतीय दर्शन की रूपरेखा** अनुवादक भट्ट, गोवर्धन, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 72।
8. **बोधिसत्वभूमिवसुबन्धु**, (1996) तिब्बती तंजूर जापानी संस्करण, पृष्ठ 172।
9. ओड़, एल.के. (1988). **शिक्षा के नूतन आयाम**, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, राजस्थान, पृष्ठ 19।
10. श्रीमाली, के.एल. (1986). **प्लानिंग फार एजुकेशन एंड एजुकेशनल आपर्चुनीटी,** पी.एल. मल्होत्रा द्वारा सम्पादित, पृष्ठ 112।
11. गोख, बी.के. (1986). **ह्यूमन वैल्यूज इन एजुकेशन**, पी.एल. मल्होत्रा द्वारा सम्पादित, पृष्ठ 119।
12. आचार्य, पी. (1988). **इज मैकाले स्टिल आवर गुरु, इकोनामिक एंड पालिटिकल विकली**, भाग–23, पृष्ठ 81।
13. ओड़, एल.के. (1994). **शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि**, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, राजस्थान पृष्ठ, 123।
14. त्यागी, महावीर सिंह, (1985). **भारत का इतिहास**, विनोद, पुस्तक मंदिर, आगरा, पृष्ठ 146।
15. बंदोपाध्याय, आर.(1991**). एजुकेशन फार ऐन इन्लाईटेंट सोसाइटी, इकोनामिक एंड पालिटिकल विकली** ,भाग–26, पृष्ठ 132।
16. अल्टेकर, ए.एस. (1980). **प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,** मनोहर प्रकाशन, वाराणसी पृष्ठ, 176।
17. देवी, गीता, (1982). **उत्तर भारत में शिक्षा व्यवस्था,** इंडियन प्रेस पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, पृष्ठ 112।

18. वर्मा, वैधनाथ प्रसाद, (1999). **शिक्षाशास्त्र,** विहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी पटना, पृष्ठ 211।
19. कोम्पेराटीव एजुकेशन–पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 119।
20. आर्यशुरकृत जातक माला का अध्ययन –पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 172।
21. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति–पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 103।
22. प्री बुद्धिस्ट इंडिया–पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 163।
23. ह्यूमन वैल्यूज इन एजुकेशन –पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ 149।